

चुनावी लोकतंत्र के साठ वर्ष Sixty Years of Electoral Democracy

माया ट्यूडर
Maya Tudor
September 10, 2012

इस वर्ष भारत अपने पहले राष्ट्रीय चुनाव की 60 वीं वर्षगांठ मना रहा है. उस चुनाव और आगामी दशकों में होने वाले हरेक चुनाव से पहले नकारात्मक सोच के लोग भविष्यवाणी करते रहे हैं या करते रहेंगे कि भारत के लोकतंत्र की जल्द ही मौत हो जाएगी. इसके विपरीत लोकतंत्र की जड़ें औपचारिक और मूल आयामों के साथ और भी मज़बूत होती चली गईं : एक ही दल के वर्चस्व के कारण उस दल में अदला-बदली होती रही और भारत के संविधान में संशोधन होते रहने के कारण जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव में भी कमी होती रही. लोकतंत्रीकरण के साठ वर्ष के बाद जब भ्रष्टाचार के असंख्य कांड सामने आ रहे हैं और भारत की चुनावी राजनीति के अंधेरे पक्ष सामने आ रहे हैं तब भी हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय लोकतंत्र के निर्माण में राजनैतिक दलों की केंद्रीय भूमिका रही है.

उपनिवेशवादी शासन से मुक्त होने के बाद खास तौर पर उन देशों में जहाँ विविधता है और गरीबी का बोलबाला है, स्थायी लोकतंत्र एक सुदूर स्वप्न ही है. इसलिए यह समझना कि भारत के आरंभिक दौर में लोकतंत्रीय व्यवस्था ने कैसे अपने पाँव जमाए, गंभीर नीतिगत और विचारणीय विषय है. मैंने अपने शोध-कार्य में सन् 1947 में भारत और पाकिस्तान की आज़ादी के तीन दशक पहले और एक दशक बाद के समय के दौरान व्यवस्थित रूप में पाकिस्तान से तुलना करते हुए भारतीय लोकतंत्र के जन्म की गुत्थी को समझने की कोशिश की है. भारत और पाकिस्तान की साझा उपनिवेशवादी विरासत रही है, प्रति व्यक्ति समान आमदनी की दर रही है और आज़ादी के बाद दोनों देशों में एक ही राजनैतिक दल का वर्चस्व रहा है. फिर भी आज़ादी के तुरंत बाद ही पाकिस्तान में निरंकुश शासन व्यवस्था ने अपनी जड़ें जमा लीं. इन तमाम ढाँचागत समानताओं के बावजूद यह विश्लेषण करना बहुत आवश्यक है कि भारत में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया शुरू होने के पीछे कौन-से संचालक कारण थे.

मेरे शोधपत्र में सुझाया गया है कि भारत और पाकिस्तान में आज़ादी के बाद जो लोकतांत्रिक भिन्नता आई, उसे उनके स्वाधीनता आंदोलनों की प्रकृति की मूलभूत भिन्नता से बेहतर समझा जा सकता है: प्रमुख वर्ग के हित और राजनैतिक दल की ताकत उन हितों को पूरा करने के लिए ही निर्मित होती है. अगर सरल ढंग से कहा जाए तो भारत एक स्थायी शासन तंत्र इसलिए बन सका क्योंकि इसका शासन एक ऐसे मज़बूत राजनैतिक दल के हाथों में था, जिसकी व्यवस्था लोकतांत्रिक थी और जिसने मूल लोकतांत्रिक ढाँचे को संस्थागत स्वरूप प्रदान किया था और लोकतांत्रिक आधार पर अपना शासन चलाया था. पाकिस्तान ऐसा करने में इसलिए विफल रहा क्योंकि इसका प्रमुख राजनैतिक दल कमज़ोर था.

ऐतिहासिक दृष्टि से वर्ग हितों ने सर्वप्रथम उपनिवेशवादी शासन के अंतर्गत भारत में राजनैतिक आंदोलनों का संचालन किया और इसी कारण लोकतांत्रिक सुधारों को बढ़ावा भी मिला और विरोध भी झेलना पड़ा. उपनिवेशवादी भारत में शासन को चलाने में मदद के लिए बाबुओं को तैयार किये

जाने के मकसद से शुरू की गई शिक्षा नीति के फलस्वरूप उन्नीसवीं सदी में शहरी, उच्चवर्ण का और शिक्षित अभिजात वर्ग तैयार होने लगा था. कालांतर में उपनिवेशवादी सरकार से रोजगार के नये और विस्तृत अवसर हासिल करने के लिए ये लोग मिल-जुल कर यचिकाएँ तैयार करने लगे और इसकी परिणति सन् 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में हुई. कांग्रेस के संगठनात्मक लक्ष्य वर्ग-आधारित थे, क्योंकि उनका उद्देश्य उपनिवेशवादी परिषदों और सिविल सेवा का विस्तार करना था, जिनका असर उस समय के उपनिवेशवादी भारत के लगभग चार सौ अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों तक ही सीमित था. यद्यपि इन सुधारों से आबादी का बहुत छोटा-सा हिस्सा ही प्रभावित हुआ था, लेकिन कांग्रेस ने इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए जिन साधनों को अपनाया था, वे *लोकतांत्रिक* थे, जैसे, खुली चर्चा, वाद-विवाद और बहुमत के आधार पर मतदान और अधिक से अधिक देसी लोगों का प्रतिनिधित्व ही इसका लक्ष्य था.

कांग्रेस के आंदोलन से हुए चुनावी सुधारों के कारण ब्रिटिश भारत में उपनिवेशवादी व्यवस्था के सुरक्षा घेरे में रहने वाले अभिजात वर्ग और युनाइटेड प्रोविंस (यूपी.) में उपनिवेशवादी व्यवस्था के सुरक्षा घेरे में रहने वाले मुसलमानों को सीधी चुनौती मिली, जिसके कारण पाकिस्तान के स्वाधीनता आंदोलन के संगठन का जन्म हुआ. सन् 1892 में चुनावी सिद्धांतों को अपनाए जाने के कारण सुरक्षा घेरे में रहने वाले अभिजात वर्ग के लोगों को सभी जगहों पर चुनौतियाँ मिलने लगीं और तेज़ी से प्रांतीय परिषदों में उनके प्रतिनिधित्व में कमी आने लगी. यूपी शासन में देसी भाषाओं को अपनाए जाने के कारण यूपी के मुसलमानों का प्रभाव घटने लगा और सरकारी नौकरियों में उनके विशेषाधिकारों में कमी आने लगी. इन दोहरी चुनौतियों के कारण यूपी के मुसलमानों के बीच प्रतिक्रियावादी राजनैतिक संगठन जन्म लेने लगा, जो सन् 1906 में मुस्लिम लीग के रूप में उभरकर सामने आया. लीग का जन्म ही लोकतांत्रिक सुधारों का विरोध करने के लिए हुआ और ये सुधार इसलिए भी अपरिहार्य हो गए थे उनसे अतिरिक्त - आनुपातिक मुस्लिम प्रतिनिधित्व का निर्माण किया जा सके. इसप्रकार लीग एक लोकतंत्र-विरोधी आंदोलन था, क्योंकि इसका उद्देश्य अधिकाधिक प्रतिनिधित्व देने की प्रवृत्ति को उभरने से रोकना था.

यही राजनैतिक आंदोलन आज़ादी के बाद भारत और पाकिस्तान के प्रमुख राजनैतिक दल बन गए और इन्होंने विरासत में ज़िम्मेदारी के साथ शासन चलाने का चोगा ओढ़ा हुआ था. इन राजनैतिक आंदोलनों का तीन अलग-अलग दृष्टियों से उदय हुआ था जिनसे दल की शक्ति परिभाषित होती थी और जिनसे लोकतांत्रिक ढंग से स्थिर शासन चलाने की क्षमता प्रत्येक दल में सीधे ही विकसित हुई. जिनके कारण ये आंदोलन अलग-अलग हुए, वह सबसे पहली दृष्टि तो यही थी कि इनके मूल गठबंधन वाले दलों के बीच एक वितरणपरक सामंजस्य था. कांग्रेस का मुख्य गठबंधन शिक्षित, शहरी और मध्यमवर्गीय लोगों और उच्च वर्ग के उन घुमंतू और प्रभावशाली किसानों के साथ था, जो ग्रामीण भारत में आनुवंशिक संरक्षण के नेटवर्क का नेतृत्व करते थे. यह एक सुसंगत वितरणपरक गठबंधन था, क्योंकि इसमें उपनिवेशवादी राज्य से अलग सामाजिक-आर्थिक पुनर्वितरण को प्रोत्साहित करने और अधीनस्थ सामाजिक समूहों के पुनर्वितरण को रोकने में दिलचस्पी रखने वाले मध्यम वर्ग के लोगों का भी प्रतिनिधित्व था. इसके विपरीत आज़ादी के बारे में हुई वार्ताओं में मुस्लिम राजनैतिक हितों के संवर्धन की अनिवार्यता के कारण उपनिवेशवादी भारत के महत्वपूर्ण मुस्लिम-बहुल दो प्रांतों में लीग के लिए गठबंधन करना अनिवार्य हो गया. इसके परिणामस्वरूप लीग के मूल गठबंधन में पंजाबी मुस्लिम आभिजात्य और बंगाली किसान लोग थे, जिनके बीच कोई सुसंगत वितरणपरक गठबंधन नहीं था, क्योंकि वे

लगभग दो विरोधी दिशाओं वाले वितरणपरक हितों से जुड़े वर्गों के प्रतिनिधि थे. दूसरी ओर कांग्रेस में *सुसंगत* वितरणपरक हितों का प्रतिनिधित्व था और यही कारण है कि कांग्रेस एक निश्चित कार्यक्रम के आधार पर गठित संगठित पार्टी थी.

दूसरी दृष्टि जिसके कारण भारत और पाकिस्तान के स्वाधीनता आंदोलनों का उदय अलग-अलग ढंग से हुआ, वह था उनका कार्यक्रमों पर आधारित राष्ट्रवाद. दोनों देशों के स्वाधीनता आंदोलनों ने बाहरी लोगों के विरोध में अपने देशों का नकारात्मक रूप में सीमांकन कर लिया था. लेकिन केवल कांग्रेस ने ही ऐसे कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करके रखी जिसके अंतर्गत एक राष्ट्र के रूप में सकारात्मक राजनैतिक कार्रवाई को दिशा दी जा सकती थी. लीग ने भी कुछ कार्यक्रम तैयार करके रखे थे और सन् 1946 में वह स्वतंत्र प्रभुसत्ता वाले देश की माँग को भी पूरी तरह से छोड़ने के लिए भी तैयार थी. लेकिन कांग्रेस न केवल आनुवंशिक जातिप्रथा का सार्वजनिक तौर पर बहिष्कार करने के लिए प्रतिबद्ध थी, बल्कि समान वयस्क मताधिकार के लिए संस्थागत रूप में आह्वान करने के लिए भी प्रतिबद्ध थी. उदाहरण के लिए कांग्रेस के राजनैतिक कार्यक्रम की विषयवस्तु बेहद लोकतांत्रिक थी. आज़ादी के बाद कांग्रेस के कार्यक्रम की प्रतिबद्धता संघीय मतभेदों को यथाशीघ्र सुलझाने और उन्हें शासकीय स्थिरता प्रदान करने की थी, जबकि लीग के अंदर ऐसी कोई प्रतिबद्धता नहीं थी और यही कारण है कि उनके संघीय ढाँचे के मतभेदों को सुलझाया नहीं जा सका. कांग्रेस के संस्थागत विषयवस्तुगत कार्यक्रम की वजह से राज्यों के गठन संबंधी मतभेदों को लोकतांत्रिक ढंग से सुलझा लिया गया.

अंतिम आयाम, जिस पर भारत और पाकिस्तान के स्वाधीनता आंदोलनों में अंतर था, वह थी उनकी संगठनात्मक मज़बूती. जहाँ भारत के स्वाधीनता आंदोलन ने अपेक्षाकृत अधिक अनुशासित दल का संगठन तैयार किया था, जिसमें प्रभावी नेतृत्व था और निचले स्तर पर की गई माँगों पर भी विचार किया जाता था, वहीं पर पाकिस्तान के स्वाधीनता आंदोलन में पार्टी उच्च शीर्षस्थ पार्टी ही बनी रही और प्रभावशाली नेतृत्व से कोई संस्थागत स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो सकी. आज़ादी के बाद कांग्रेस का नेतृत्व केंद्रीय होते हुए भी आंतरदलीय संगठन का प्रतिनिधित्व करता रहा और तेज़ी से राज्यों के गठन संबंधी मामलों को सुलझाता रहा. पाकिस्तान में कार्यक्रमबद्ध और सुसंगठित राजनैतिक पार्टी के अभाव में वर्ग-आधारित संघर्षों के कारण संवैधानिक गतिरोध बना रहा, जिसके कारण सन् 1958 में सैनिक हस्तक्षेप की नौबत आ गई. संक्षेप में आज़ादी से पहले वर्ग हितों के संवर्धन के लिए गठित राजनैतिक दलों के स्वरूप से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि आज़ादी के बाद भारत और पाकिस्तान के लोकतांत्रिक ढाँचे में इतना अंतर क्यों है.

आज जब भारतीय राजनीति के अनेक प्रेक्षक भ्रष्टाचार का विलाप करते हुए उसे राजनैतिक दलों की विशेषता बताते हैं तो यह भी उल्लेखनीय है कि एक प्रसिद्ध विद्वान् के शब्दों में राजनैतिक दलों के बिना आधुनिक लोकतंत्र की कल्पना करना भी असंभव है. भारत के नागरिक यदि अपने राजनैतिक दलों और अपने प्रतिनिधियों को जिम्मेदार ठहराने के लिए चिंतित हैं तो इसमें कुछ गलत नहीं है. ये सुधार कितने ही चुनौतीपूर्ण क्यों न हों, लेकिन उन्हें तभी लागू किया जा सकता है जब लोकतांत्रिक सरकार स्थिर और टिकाऊ हो. राजनैतिक अस्थिरता के बीच इन सुधारों को लागू नहीं किया जा सकता.

माया ट्यूडर ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के सेंट जॉन्स कॉलेज में राजनीति की फ़ैलो हैं और द

प्रोमिस इन पावर: द ओरिजिन ऑफ डैमोक्रेसी इन इंडिया ऐंड डैमोक्रेसी इन पाकिस्तान (कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रैस, कैम्ब्रिज और नई दिल्ली, मार्च, 2013, भारत में मई 2013 में उपलब्ध)की लेखिका हैं.

हिंदी अनुवाद: विजय कुमार मल्होत्रा, पूर्व निदेशक (राजभाषा), रेल मंत्रालय, भारत सरकार
<malhotravk@hotmail.com>